दैनिक भास्कर

Date: 14-10-17

हंगर इंडेक्स पर और नीचे जाने के कारण खोजने होंगे

ग्लोबल हंगर इंडेक्स के पैमाने पर भारत की जो भयानक तस्वीर पेश की है वह पूरे देश के लिए चिंता का विषय होनी चाहिए।

संपादकीय

भूख औरउसके बुरे प्रभावों के बारे में वाशिंगटन स्थित इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट (आईएफपीआरआई) ने ग्लोबल हंगर इंडेक्स के पैमाने पर भारत की जो भयानक तस्वीर पेश की है वह पूरे देश के लिए चिंता का विषय होनी चाहिए। पिछले साल इस पैमाने पर भारत की रैंक 97वीं थी, जो इस साल गिरकर 100वीं हो गई है। विडंबना यह है कि तमाम तरह की परेशानियों में घिरे रहने वाले नेपाल (72), म्यांमार(77), श्रीलंका(84) और बांग्लादेश(88) जैसे एशिया के छोटे देश भी हमसे काफी आगे हैं। यहां तक कि उत्तर कोरिया की भी स्थिति हमसे बेहतर है। भारत के राष्ट्रवादियों के लिए सांत्वना की बात इतनी ही है कि क्रमशः 106 और 107 रैंक के साथ पाकिस्तान और अफगानिस्तान हमसे पीछे हैं। इससे भी ज्यादा चौंकाने वाली बात यह है कि इस पैमाने पर 27वें रैंक के साथ चीन हमसे बहुत आगे है। कुपोषण, बाल मृत्यु दर, लंबाई के अनुपात में वजन कम होना और बच्चों की लंबाई बढ़ने जैसे कारकों के आधार पर निकाले गए इस सूचकांक पर कई नज़रिये से विश्लेषण की जरूरत है। सबसे पहले तो यही सोचा जाना चाहिए कि आखिर कौन से वे कारण हैं, जिनके कारण पिछले साल के मुकाबले भारत की रैंक सुधरने की बजाय गिरावट आई है। क्या यह विकास दर में आने वाली कमी का प्रभाव है या फिर नोटबंदी जैसे कड़े आर्थिक फैसले का? इस तात्कालिक कारण की पहचान के साथ ही उन बड़े कारणों पर भी विचार किए जाने की जरूरत है, जिनके नाते पिछले दो दशकों में जीडीपी में 4.5 गुना वृद्धि और प्रति व्यक्ति उपभोग में तीन गुना वृद्धि हासिल करने के बावजूद इस देश में 19 करोड़ लोग कुपोषित हैं। भारत की यह दिक्कत इसलिए नहीं है कि वह खाद्यान्न उत्पादित नहीं करता बल्कि ऐसा इसलिए है, क्योंकि आम आदमी की खाद्यान्न और पोषण सामग्री तक पहुंच नहीं है। उसकी क्रय क्षमता सीमित है इसलिए उसकी थाली सूनी है और उसमें पोषण सामग्री की कमी रहती है। विडंबना यह है कि भारतीय खाद्य निगम के गोदाम अटे पड़े हैं और रेल के डिब्बों में भरा अनाज स्टेशनों पर सड़ रहा है। यह

स्थिति भारतीय लोकतंत्र के माथे पर वह कलंक है, जिसे मिटाने के लिए कई बार लोग चीन जैसी तानाशाही का आह्वान करने लगते हैं, जो हमारा अभीष्ट नहीं है। भारत को लोकतांत्रिक प्रणाली के भीतर ही इस कलंक को मिटाने का संकल्प करना होगा।

Date:14-10-17

काम ही खुशी है, जॉब देने का वादा पूरा करें

वर्ल्ड हैप्पीनेस रिपोर्ट का पूरा एक अध्याय काम पर समर्पित, सबसे अप्रसन्न वही लोग जो बेरोजगार हैं

गुरुचरणदास

मेरे सारे परिचितों ने पिछले माह डोकलाम में भारत-चीन गतिरोध खत्म होने पर गहरी राहत महसूस की थी। हफ्तों तक हवा में युद्ध के बादल मंडराते रहे, जबकि भारत-चीन को अपने इतिहास के इस निर्णायक मौके पर युद्ध बिल्कुल नहीं चाहिए। हम में से कई लोग भूटान के प्रति गहरी कृतज्ञता महसूस कर रहे हैं कि वह भारत के साथ खड़ा रहा और हम अन्य पड़ोसियों से भी ऐसे ही रिश्तों की शिद्दत से कामना करते हैं। हाल के वर्षों में भारत को बिजली बेचकर भूटान समृद्ध हुआ है।बेशक, राष्ट्रीय सफलता के पैमाने के रूप में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की जगह सकल राष्ट्रीय प्रसन्नता (जीएनएच) लाकर भूटान दुनिया में मशहूर हुआ है। पहले मुझे इस पर संदेह था कि सरकारें लोगों को प्रसन्नता दे सकती है, क्योंकि प्रसन्नता मुझे 'भीतरी काम' लगता, व्यक्तिगत रवैये तथा घरेलू परिस्थितियों का मामला। हम में से ज्यादातर लोग नाकाम विवाह, कृतघ्न बच्चों, प्रमोशन मिलने यहां तक कि आस्था के अभाव के कारण दुखी हैं। लेकिन, अब मैं अलग तरह से सोचता हूं। भूटान ने दुनिया को बता दिया है कि ऐसी राज्य-व्यवस्था जो स्वतंत्रता, अच्छा शासन, नौकरी, गुणवत्तापूर्ण स्कूल स्वास्थ्य सुविधाएं और भ्रष्टाचार से मुक्ति सुनिश्चित करे, वह अपने लोगों की भलाई के स्तर में व्यापक सुधार ला सकती है। भूटान का आभार मानना होगा कि अब वर्ल्ड हैपीनेस रिपोर्ट तैयार होती है, जिसे संयुक्त राष्ट्र की मान्यता है। 2017 की रिपोर्ट में हमेशा की तरह स्कैंडीनेवियाई देश वर्ल्ड रैंकिंग में सबसे ऊपर हैं। अमेरिका 14वें तो चीन 71वें स्थान पर है। 1990 की तुलना में प्रतिव्यक्ति आय पांच गुना बढ़ने के बावजूद चीन में प्रसन्नता का स्तर नहीं बढ़ा है। वजह चीन की सामाजिक सुरक्षा में पतन और बेरोजगारी में हाल में हुई वृद्धि हो सकती है। दुख है कि हम बहुत पीछे 122वें स्थान पर हैं, पाकिस्तान नेपाल से भी पीछे।

हमारे पूराने जमींदार मानते थे कि बेकार बैठे रहना मानव की स्वाभाविक अवस्था है। इसके विपरीत मैं मानता हूं कि जुनून के साथ किया जाने वाला काम प्रसन्नता के लिए आवश्यक है। वह व्यक्ति भाग्यवान है, जिसके पास ऐसा कोई काम है, जिसे करने में उसे खुशी मिलती है और वह उसमें माहिर भी है। मैं मानता हूं कि जीवन का मतलब खुद की खोज नहीं है बल्कि खुद का निर्माण है। फिर कोई कैसे अपने काम और जीवन को उद्देश्यपूर्ण बनाए? इस सवाल के जवाब में मैं कभी-कभी मित्रों के साथ यह थॉट गेम खेलता हूं। मैं उनसे कहता हूं, 'आपको अभी-अभी डॉक्टर ने कहा है कि आपके पास जीने के लिए तीन महीने शेष हैं। शुरुआती सदमे के बाद आप खुद से पूछते हैं मुझे अपने बचे हुए दिन

कैसे बिताने चाहिए? क्या आखिरकार मुझे कुछ जोखिम उठाने चाहिए? क्या मुझे किसी के प्रति अपने प्रेम का इजहार कर देना चाहिए, जिससे मैं बचपन से गोपनीय रूप से प्रेम करता रहा हूं ? मैं जिस तरह ये कुछ माह ज़िंदगी जीता हूं, वैसे ही मुझे पूरी ज़िंदगी जीनी चाहिए। बचपन से ही हमें कड़ी मेहनत करने, स्कूल में अच्छे अंक लाने और अच्छे कॉलेज में प्रवेश लेने को कहा जाता रहा है। यूनिवर्सिटी में किसी अज्ञात क्षेत्र में खोज करने की बजाय हम पर 'उपयोगी विषय' लेने पर जोर डाला जाता है। अंतत: हमें अच्छी-सी नौकरी मिल जाती है, योग्य जीवनसाथी से विवाह हो जाता है, हम अच्छे से मकान में रहने लगते हैं और शानदार कार मिल जाती है। यह प्रक्रिया हम अगली पीढ़ी के साथ दोहराते हैं। फिर 40 पार होने के बाद हम खुद से पूछते हैं, क्या जीवन का अर्थ यही है? हम अगले प्रमोशन के इरादे से लड़खड़ाते आगे बढ़ते हैं, जबकि ज़िंदगी पास से गुजर जाती है। हमने अब तक अधूरी ज़िंदगी जी है और यह बहुत ही त्रासदीपूर्ण नुकसान है।

जब हम छोटे थे तो किसी ने हमें जीविका कमाने' और 'जीवन कमाने' का फर्क बताने की जहमत नहीं उठाई। किसी ने प्रोत्साहित नहीं किया कि हम अपना जुनून तलाशें। हमने मानव जाति की महान किताबें नहीं पढ़ीं, जिसमें अपनी ज़िंदगी में अर्थ पैदा करने के लिए अन्य मानवों के संघर्ष का वर्णन है। हममें से बहुत कम महानतम संगीतकार मोजार्ट की तरह भाग्यवान हंै, जिन्हें तीन साल की उम्र में ही संगीत का जुनून मिल गया। आपको जुनूनी काम मिल गया है इसका पता इससे चलता है कि जब काम करते हुए आपको लगता ही नहीं कि आप 'काम' कर रहे हैं। अचानक पता चलता है कि शाम हो गई है और आप लंच लेना ही भूल गए हैं। खुशी का मेरा आदर्श, गीता में कृष्ण के कर्मयोग के विचार के अनुरूप है। कर्म से खुद को अलग करने की बजाय कृष्ण हमें इच्छा रहित काम यानी निष्काम कर्म की सलाह देते हैं। यानी काम से कोई स्वार्थ, व्यक्तिगत श्रेय अथवा पुरस्कार की कामना रखना। जब कोई काम में डूब जाता है, तो मैं पाता हूं कि उसका अहंकार गायब हो जाता है। जुनून के साथ, खुद को भुलाकर किया गया काम बहुत ऊंची गुणवत्ता का होता है, क्योंकि आप अहंकार के कारण भटकते नहीं। जीवन कमाने की यह मेरी रेसिपी है और यही प्रसन्नता का रहस्य है। इस में प्रसन्नता के दो अन्य स्रोत जोड़ना चाहूंगा : जिस व्यक्ति के साथ आप जीवन जी रहे हैं, उससे प्रेम करें और कुछ अच्छे मित्र बनाएं। जहां तक मित्रों की बात है तो पंचतत्र भी यही सलाह देता है, 'मित्र' दो अक्षरों का रत्न है, उदासी, दुख और भय के खिलाफ आश्रय और प्रेम और भरोसे का पात्र। भूटान ने चाहे वर्ल्ड हैपीनेस रिपोर्ट का विचार लाया हो पर 2017 की सूची में यह 95वें स्थान पर है। पिछले साल के मुकाबले भारत चार पायदान खिसककर 122वें स्थान पर पहुंच गया और जाहिर है यह उस राष्ट्र के लिए बहुत ही हताशाजनक है, जो 'अच्छे दिन' का इंतजार कर रहा है। भारत की कम रैंकिंग के लिए जिम्मेदार है जॉब का अभाव, निचले स्तर पर भ्रष्टाचार, देश में व्यवसाय करने में परेशानियां और कमजोर गुणवत्ता की शिक्षा स्वास्थ्य सुविधाएं, जिनमें शिक्षक डॉक्टर प्राय: नदारद होते हैं। भारत ने समृद्धि में रैंकिंग सुधारी है, क्योंकि यह दुनिया की सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में शुमार हो गया है और समृद्धि फैल रही है।वर्ल्ड हैपीनेस रिपोर्ट का एक पूरा अध्याय काम पर समर्पित है। चूंकि हममें से ज्यादातर लोग अपना जीवन काम करते हुए बिताते हैं तो काम ही हमारी प्रसन्नता को आकार देता है। रिपोर्ट बताती है कि सबसे अप्रसन्न लोग वे हैं, जो बेरोजगार हैं। इसीलिए प्रधानमंत्री मोदी यदि 2019 का चुनाव जीतना चाहते हैं तो उनके लिए जॉब देने का वादा पूरा करना इतना जरूरी है।

नईदुनिया

Date: 14-10-17

न्यायिक सक्रियता में बना रहे संतुलन

डॉ. एके वर्मा

दिल्ली-एनसीआर क्षेत्र में दीपावली पर प्रदूषण रोकने के लिए पटाखों की बिक्री पर प्रतिबंध लगाने के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर सहमति-असहमति का जो सिलसिला कायम हुआ, वह शायद इस पर्व तक जारी रहने वाला है। इस फैसले को लेकर तरह-तरह के तर्क-वितर्क हैं। लोकतंत्र में कोई अंतिम सत्य नहीं होता, फिर भी सियासी फलक पर जनता का बहुमत और संवैधानिक फलक पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को स्वीकार करने की बाध्यता होती है। पटाखों की बिक्री पर रोक वाले फैसले के पीछे एक नेक इरादा दिखता है, लेकिन इसका एक आर्थिक पहलू भी है। दिल्ली-एनसीआर के जिन तमाम व्यापारियों ने एक माह पहले सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में संशोधन के बाद उन्हें खरीदा उनके नुकसान की भरपाई कौन करेगा? क्या दीपावली के बाद पटाखों की बिक्री में ढील देने से इस नुकसान की भरपाई हो जाएगी? क्या ऐसा निर्णय कुछ महीने पहले नहीं लिया जाना चाहिए था या क्या इसे अगले वर्ष के लिए नहीं टाला जा सकता था? सवाल यह भी है कि ऐसा फैसला दिल्ली-एनसीआर के लिए ही क्यों? पूरे देश में यह प्रतिबंध क्यों नहीं? क्या और शहरों में प्रदूषण की समस्या नहीं? सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से ऐसे सवालों के साथ यह बुनियादी सवाल भी उठा है कि क्या संविधान न्यायपालिका को अपनी शक्तियों का विस्तार करने की इजाजत देता है?हमारे संविधान निर्माताओं ने अमेरिका की तरह न्यायिक-सर्वोच्चता और ब्रिटेन की तरह संसदीय-सर्वोच्चता का सिद्धांत स्वीकार नहीं किया था। उन्होंने व्यवस्थापिका और न्यायपालिका में संतुलन बनाया था, लेकिन काफी समय से सर्वोच्च न्यायालय ने इस संतुलन को दरकिनार कर न्यायिक सर्वोच्चता की स्थापना कर दी है। 1973 में केशवानंद भारती मुकदमे में शीर्ष न्यायालय ने संविधान के मूल ढांचे का सिद्धांत प्रतिपादित किया था। इसके अनुसार संसद या मंत्रिमंडल के किसी निर्णय को वह न केवल इस आधार पर निरस्त कर देगा कि वह संविधान के प्रावधानों के विरुद्ध है, वरन इस आधार पर भी कि वह संविधान के मूल ढांचे के अनुकूल नहीं है। ध्यान रहे कि सर्वोच्च न्यायालय ने अंतिम रूप से मूल ढांचे को परिभाषित नहीं किया है। यह एक ऐसी तलवार है जो अदृश्य है और जो संसद या सरकार के किसी भी निर्णय पर 'न्यायिक ट्रंप कार्ड की भी तरह है। सर्वोच्च न्यायालय किसी भी कानून या निर्णय को यह कहकर निरस्त कर सकता है कि वह संविधान के मूल ढांचे के प्रतिकूल है।

1980 में वरिष्ठ अधिवक्ता कपिला हिंगोरानी ने बिहार की जेलों में बंद असंख्य कैदियों की रिहाई के लिए सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की थी। हुसैनआरा खातून बनाम गृह सचिव बिहार नाम वाले इस मुकदमे में न्यायमूर्ति पीएन भगवती की खंडपीठ ने 40000 कैदियों की रिहाई के आदेश दिए। जस्टिस भगवती ने अनु. 39ए के तहत मुफ्त न्यायिक मदद को सार्थक करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में एक 'जनहित याचिका अनुभाग की स्थापना की। तबसे व्यक्तियों, गैर-सरकारी संस्थाओं व सामाजिक समूहों की ओर से जनहित याचिकाओं की बाढ़-सी आ गई है, अदालत का काफी समय ले लेती हैं।बीते 37 वर्षों कई 'प्रोफेशनल जनहित याचिकावादी प्रकट हो गए हैं। भारत जैसे बड़े देश में असंख्य समस्याएं हैं और विधानमंडलों व सरकारों की अकर्मण्यता तथा उपेक्षा के चलते नागरिकों की अनगिनत गंभीर समस्याएं अनुत्तरित हैं। जनता को न्यायपालिका की सक्रियता अपनी समस्याओं का एकमात्र निदान लगती है। अनेक न्यायाधीश भी सामाजिक संवेदनशीलता के चलते जनहित याचिकाओं की उपेक्षा नहीं कर पाते, लेकिन इससे न्यायालय का मूल काम बाधित होता है। ऐसे में जरूरत इसकी है कि जनहित याचिकाओं से निपटने के लिए न्यायपालिका अमेरिकी पैटर्न पर किसी जूरी सिस्टम का सूत्रपात करे जिससे सामाजिक सरोकारों से जुड़े मसले जनता के सहयोग से निपटाए जा सकें।

हर छोटे-बड़े मामले को सुलझाने की प्रवृत्ति से एक सवाल यह भी उठ रहा है कि संविधान ने सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने हेतु जो सीमांकन किया था, क्या सर्वोच्च अदालत उसे खत्म करना चाहती है? संविधान के अनु. 32 में सर्वोच्च न्यायालय को केवल मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए 'रिट (अनुदेश) जारी करने का अधिकार था। अनु. 226 के तहत उच्च न्यायालयों को 'रिट जारी करने का अधिकार न केवल मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए वरन 'अन्य किसी भी उद्देश्य के लिए प्रदान किया गया था। उद्देश्य यह था कि सर्वोच्च न्यायालय काम के बोझ से बहुत दबा होगा, क्योंकि उस पर सभी राज्यों के उच्च न्यायालयों से आने वाली अपीलों और पूरे देश की जनता के मौलिक अधिकारों को लागू कराने का दायित्व होगा। इसके अलावा केंद्र-राज्य विवाद या दो राज्यों के बीच विवाद वाले कुछ ऐसे मुकदमे होगें, जो केवल सर्वोच्च न्यायालय में ही लाए जा सकते हैं। उच्च न्यायालयों में अनु. 226 के तहत जनहित याचिकाओं का निस्तारण तो उचित है, पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी उन सभी मुकदमों की सुनवाई करना जो 'अन्य किसी भी उद्देश्य के अंतर्गत आते हैं, कितना उचित और संवैधानिक है?अमेरिकी संविधान में 'कानून की उचित प्रक्रिया द्वारा वहां का सर्वोच्च न्यायालय नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है, जबकि भारत में अनु. 21 द्वारा न्यायालय 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुरूप ही ऐसा कर सकता है। अमेरिकी न्यायालय किसी कानून या आदेश को न केवल संविधान के प्रावधानों के आधार पर जांचता है, वरन अच्छे-बुरे होने का भी निर्णय लेता है, जबकि भारतीय न्यायपालिका संविधान के प्रावधानों के अनुसार ही निर्णय देने की अधिकारी थी, किंतु उसने इसे विस्तार दे दिया है। वह 'संविधान के मूल ढांचे के आधार पर किसी कानून या आदेश को निरस्त कर सकती है। यह अदालत द्वारा स्वयं को 'न्यायिक वीटो देने जैसा है, जिसकी कल्पना हमारे संविधान निर्माताओं ने कभी नहीं की थी।

सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक नियुक्तियों का भी अधिकार कार्यपालिका से लगभग छीन-सा लिया है। यह कहने में हर्ज नहीं कि शीर्ष न्यायपालिका द्वारा अपने संवैधानिक अधिकारों का विस्तार कर काम के बोझ को बढ़ा लिया गया है। अमेरिका में भी 1803 में मारबरी बनाम मेडिसन मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने अधिकारों को बढ़ा लिया था। अन्य देशों में भी यही प्रवृत्ति है। 2007 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति मार्कंडेय काटजू ने हुए कहा था, न्यायाधीशों को अपनी लक्ष्मण रेखा खींचनी चाहिए और सरकार चलाने का प्रयास नहीं करना चाहिए...उन्हें राजा की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए। पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति आनंद भी यह कह चुके हैं कि न्यायाधीशों को न्यायिक दुस्साहस से

बचना चाहिए और कानून की सीमाओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय को सुनिश्चित करना होगा कि कैसे जनहित याचिकाओं के दुरुपयोग को रोका जाए, कैसे अपने बोझ को कम किया जाए और कैसे उन मुकदमों पर ज्यादा ध्यान दिया जाए, जो वास्तव में काबिले-गौर हैं। इसके साथ ही उसे कुछ ऐसा भी करना होगा कि संविधान की मूल भावना की उपेक्षा न हो और सरकार के तीनों अंगों में पारस्परिक सम्मान बना रहे।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 13-10-17

ग्रामोदय का संकल्प

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने नानाजी देशमुख जन्म शताब्दी समारोह में गांवों को आत्मनिर्भर और गरीबी एवं बीमारी से मुक्त बनाने की जो बात की है उससे कोई व्यक्ति असहमत नहीं हो सकता है। जब तक भारत के गांव सशक्त नहीं होंगे तब तक भारत विकसित हो ही नहीं सकता। प्रधानमंत्री कह रहे हैं कि 2022 तक गरीबी भारत को छोड़ देगी। हम भी कामना करेंगे कि प्रधानमंत्री का यह विास साकार हो। हालांकि सहसा इस पर विास नहीं होता। आखिर हमारे देश ने ''गरीबी हटाओ' का नारा पहले भी सुना है। हां, यह पहली बार है कि ऐसे हर लक्ष्य के लिए समय सीमा निर्धारित की गई है। तो उम्मीद रखने में क्या हर्ज है? लेकिन सवाल तो यही है कि ये लक्ष्य प्राप्त होंगे कैसे? प्रधानमंत्री इसके लिए कुछ सूत्र भी दे रहे हैं। मसलन, गांव के विकास कार्य को निर्धारित समय सीमा के भीतर और लक्ष्य के अनुरूप पूरा किए जाने की जरूरत है। दूसरे, गांव की अपनी जो शक्ति है, सबसे पहले उसी को जोड़ते हुए विकास का मॉडल बनाया जाए। तीसरे, योजनाओं पर काम करते हुए यह ध्यान रखना होगा कि वह इस बात पर आधारित नहीं हो कि उसमें कितना काम किया (आऊटपुट) गया बल्कि इसका परिणाम (आऊटकम) क्या रहा? चौथे, हमने कितना बजट खर्च किया, इस पर जोर होने की बजाय, यह ध्यान रखा जाए कि लक्ष्य क्या था और हमने कितना कार्य पूरा किया? ये सारे सूत्र अगर वाकई इसी तरह साकार हो जाएं तो कोई भी लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। किंतु इसके लिए काम करने वाली मशीनरी को भी संकल्पित करना होगा। दुर्भाग्य यह है कि हमारे देश में सरकारी तंत्र का बड़ा अंश अभी भी परंपरागत काम की औपचारिकता पूरी करने की मानसिकता से बाहर नहीं निकल रहा है। इसके बगैर गांवों का कायाकल्प करने का महान लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। फिर भ्रष्ट व्यवहार योजनाओं के सामने अभी भी सुरसा की तरह मुंह फैलाए खड़ा है। इनसे हर हाल में मुक्ति पानी होगी। और प्रधानमंत्री ने स्वयं स्वीकार किया है कि जातिवाद का जहर विकास के सपने को चूर कर देते हैं। समाज की मानसिकता में बदलाव केवल भाषण से नहीं आ सकता। राजनीति स्वयं जातिवाद का पोषण कर रही है। जब तक राजनीति जातिवाद के दायरे से बाहर नहीं आएगी, वह समाज को इसके लिए प्रेरित नहीं कर सकती है। प्रधानमंत्री ने बीमारी तो सही पहचाना है, पर उसका इलाज वे कर पाते हैं या नहीं यह देखने वाली बात होगी।